Toppersnotes
Unleash the topper in you

UGC-NET

भूगोल

NATIONAL TESTING AGENCY (NTA)

पेपर - 2 || भाग - 1

भू - आकृति एवं जलवायु विज्ञान

SIERRA INNOVATIONS

UGC NET

भूगोल

S.No.	Chapter Name	Page No.
	इकाई – 1	
1	भू–आकृति विज्ञान	1
2	महाद्वीपीय प्रवाह	2
3	प्लेट विवर्तनिकी	9
4	आंतरिक एवं बाह्य बल	16
5	अनाच्छादन एवं अपक्षय	20
6	भू आकृतिक चक्र (डेविस और पेंक)	29
7	ढाल विकास का सिद्धांत और प्रकम	37
8	भूसंचलन (भूकंपनीयता, बलन, भ्रंश तथा ज्वालामुखीयता)	42
9	स्थल निर्माण घटना और भू–आकृतिक संकट के कारण (भूकंप, ज्वालामुखी, भूस्खलन, हिमस्खलन)	58

	इकाई – 2	
1	जलवायु विज्ञान	96
2	वायुमंडल की संरचना एवं संयोजन	97
3	सूर्यताप	102
4	पृथ्वी का ऊष्मा बजट एवं तापमान वितरण	105
5	वायुमण्डलीय दाब	111
6	वायु का सामान्य परिसंचरण	113
7	मानसून (जेट धाराएँ, वायुराशियाँ, वाताग्र)	115
8	चक्रवात	131
9	वर्षण के प्रकार एवं वितरण	137
10	विश्व जलवायु वर्गीकरण एवं जलवायु प्रदेश	144
11	कोपेन का जलवायु वर्गीकरण	170
12	थार्नवेट का जलवायु वर्गीकरण	174
13	मौसमी संकट एवं आपदाएँ	177

इकाई - 1

भू-आकृति विज्ञान (Geomorphology)

भू-आकृति विज्ञान (Geomorphology) शब्द तीन शब्दों भू (Geo) आकृति (Morpho) एवं विज्ञान (Logy) से मिलकर बना है, जिसका अर्थ हुआ, "पृथ्वी की आकृतियों का विज्ञान" अर्थात् भू-आकृतियों के अध्ययन का विज्ञान । पृथ्वी के तल पर विभिन्न भू-आकृतियों जैसे महाद्वीप, महासागर, पर्वत, पठार, नदी घाटियाँ, सागरीय भृगु (Sea Cliff), निलंबी घाटी (Hanging Valley) आदि विद्यमान हैं । क्या भू-आकृति-विज्ञान, उपर्युक्त सभी भू-आकृतियों के अध्ययन की व्यवस्था करता है । नहीं, क्योंकि यह विज्ञान भू-आकृतियों का अध्ययन तो करता है, पर भूतल पर उपलब्ध समस्त भू-आकृतियों का अध्ययन नहीं करता, केवल कुछ ही भू-आकृतियों का अध्ययन करता है । अतः इसका अध्ययन क्षेत्र सीमित है । भूतल पर उपस्थित समस्त भू-आकृतियों को डैविसबरी ने तीन प्रमुख वर्गों में विभक्त किया है-

1. <u>प्रथम श्रेणी की भू-आकृतियाँ</u>
   जैसे महाद्वीप एवं महासागर इनका निर्माण सबसे पहले हुआ है और ये आकृतियाँ भूतल की सबसे बडी भू-आकृतियाँ हैं ।
2. <u>द्वितीय श्रेणी की भू-आकृतियाँ</u>
   इस श्रेणी की भू-आकृतियों के अंतर्गत महाद्वीपों पर उपस्थित पर्वत एवं पठारों को सम्मिलित किया गया है जो पहली श्रेणी की भू-आकृतियों पर आरोपित है ।
3. <u>तृतीय श्रेणी की भू-आकृतियाँ</u>

   इसके अंतर्गत वे भू-आकृतियाँ सम्मिलित की गई हैं, जो प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी की विशाल भू-आकृतियों पर जन्म लेती है । उदाहरण के लिए नदी-घाटियाँ, जल-प्रपात, जलजगर्तिकाएँ, बाढकृत मैदान, नदी वेदिकाएँ, पर्वतीय ढाल, हिमानी घाटियाँ, रूण्डित गिरिस्कंध (Spurs), हिमजगह्वर (Cirque) हिमोढ (Moraine), हिम धौल मैदान (Outwash Plain) अपोढ मैदान (Till Plain), सागरीय पुलिन, अलग्न स्तंभ, सागरीय मेहराब, रोधिकाएँ, भूजिह्वा, हमादा, बजादा, अपवाहन गर्त, बालू टिब्बे, कार्ट सेतु, कार्ट सुरंग, राजकुंड (Polje), अपक्षय गर्त (Weathering pits), शैलमलबा शंकु (Talus Cone), खंडाश्म पुंज (Felsenmeere) आदि । इनकी संख्या असंख्य है । यहाँ हमारे सम्मुख अनेक प्रश्न खडे होते हैं । प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी की भू-आकृतियाँ भी भौतिक पर्यावरण का एक अभिन्न एवं महत्वपूर्ण अंग होने के नाते, भूगोल शास्त्र के विषय क्षेत्र में आती है, पर इनका अध्ययन भू-आकृतिविज्ञान के बाहर क्यों रखा गया है ? यदि भू-आकृति विज्ञान पीछे उल्लिखित प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी की भू-आकृतियों के अध्ययन की व्यवस्था नहीं करता तो किस शास्त्र के अंतर्गत इनके अध्ययन की व्यवस्था की गई है और क्यों ? क्या भू-आकृति विज्ञान तृतीय श्रेणी की सभी भू-आकृतियों के अध्ययन की व्यवस्था करता है अथवा इस विषय के अंतर्गत कुछ सीमित एवं चुनी हुई भू-आकृतियों के विकास का अध्ययन किया जाता है ।

महाद्वीपीय प्रवाह

(Continental Drift)

महाद्वीपीय विस्थापन पृथ्वी के महाद्वीपों के एक-दूसरे के सम्बन्ध में हिलने को कहते हैं । यदि करोड़ों वर्षों के भौगोलिक युगों में देखा जाए तो प्रतीत होता है कि महाद्वीप और उनके अंश समुन्द्र के फर्श पर टिके हुए हैं और किसी-न-किसी दिशा में बह रहे हैं। महाद्वीपों के बहने की अवधारणा सबसे पहले 1596 में डच वैज्ञानिक अब्राहम ओर्टेलियस ने प्रकट की थी लेकिन 1912 में जर्मन भू-वैज्ञानिक एल्फ्रेड वेगेनर ने स्वतन्त्रा अध्ययन से इसका विकसित रूप प्रस्तुत किया । आगे चलकर प्लेट विवर्तनिकी का सिद्धांत विकसित हुआ जो महाद्वीपों की चाल को महाद्वीपीय प्रवाह से अधिक अच्छी तरह समझा पाया ।

अब्राहम ओलियस (1596), थियोडोर क्रिस्टोफ लिलिएंथल (1756), अलेक्जेंडर वॉन हम्बोल्ट (1801 व 1845), एंटोनियो स्नाइडर-पेलेग्रिनी तथा अन्य ने पहले ही यह ध्यान दिया था कि अटलांटिक महासागर के दोनों विपरीत छोर के महाद्वीपों के आकार एक दूसरे में ठीक-ठीक बैठते हैं (विशेष रूप से अफ्रीका तथा दक्षिण अमरीका) ।

महाद्वीपीय विस्थापन की परिकल्पना

क्रिस्टोफर कोलम्बस के 1492 में अमेरिका पहुँचने के साथ ही सागरीय तथ्यों के बारे में जानकारी इकट्ठा करने का काम प्रारम्भ हुआ जब उन्होंने दुबारा यात्रा की तो अटलांटिक महासागर के पश्चिम तट का मानचित्रण करवाया । 16वीं सदी तक पुर्तगालियों ने अटलांटिक महासागर के तटवर्ती भागों का आशा अन्तरीप तक का मानचित्रण करवाया । 1620 में प्रसिद्ध इंग्लिश प्रकृति वैज्ञानिक फ्रेंसिस बेकन ने अध्ययन कर बताया कि अफ्रीका व अमेरिका के तटीय भाग अच्छी प्रकार मेल खाते हैं जिस आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये दोनों महाद्वीप एक ही वक्त में बने हैं व पहले में परस्पर संयोजित थे ।

ओरटोलियस (Ortolius, I-1527-1598) ने अपनी रचना "Thesaurus Geographicus" (1596) में कुछ महाद्वीपों की तट रेखाओं को सुमेलित रूप में वर्णित कर स्पष्ट किया है । 1668 में पी. प्लासेट नामक फ्रेंच विद्वान ने भी महाद्वीपों की समरूपता सम्बन्धी मत प्रस्तुत किये । ये सभी अध्ययन महाद्वीपीय प्रवाह की परिकल्पना के पक्ष में ठोस प्रमाण रहे जिन्हें आगे विभिन्न विद्वानों ने आधार बनाया ।

महाद्वीपीय प्रवाह सिद्धान्त

महाद्वीपीय प्रवाह क्रम सम्बन्धी विचारों का बीजारोपण यद्यपि 17वीं सदी में महासागरों के मानचित्र व संरचना सम्बन्धी जानकारी प्रस्तुत करने के साथ ही हो गया था । जिसे वक्त के साथ प्रमाण जुटा कर फ्रेंसिस प्लासेट, बेकन, एन्टोनियो स्नाइडर, एफ.बी.टेलर आदि ने आगे बढाया । एन्टोनियो स्नाइडर नामक फ्रेंच विद्वान् ने इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम गहराई से विचार प्रस्तुत किए । उन्होंने अपनी पुस्तक "Creation and its Mysteries Revealed" में स्पष्ट किया कि महाद्वीप विस्थापित होने से पहले किस प्रकार एक साथ संयोजित थे ।

इसका मानचित्र उन्होंने अपनी रचना "Carboniferous Geography" में प्रस्तुत किया । उन्होंने इस बारे में उत्तरी अमेरिका व यूरोप से जीवाश्मों को संग्रहीत कर प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किये । पर इनके प्रवाह कारण विज्ञान व साधारण लागी हेतु अधिक प्रभावी नहीं रहे व कुछ वर्षों में प्रभावहीन हो गये । महाद्वीपीय प्रवाह सम्बन्धी विचारों को सर्वप्रथम सिद्धान्त रूप में 1908 में स्वीकार किया गया जो 1910 में प्रकाशित हुए । जब अमेरिकी भू-वैज्ञानिक टेलर (Taylor, FrankB.) ने विभिन्न भू-गर्भिक साक्ष्य प्रस्तुत कर इसे एक संगठित आधार प्रदान किया । टेलर के आधार पर स्थल भागों का क्षैतिजीय स्थानान्तरण हुआ । उनकी परिकल्पना का प्रमुख ध्येय टर्शियरी युग के वलित पर्वतों की भौगोलिक विरल करना था । (महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त एफ. बी. टेलर ने 1908 में दिया जिसको उन्होंने स्थापन सिद्धान्त कहा ।)

टेलर के सामने मुख्य समस्या उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका के रॉकीज व एण्डीज पर्वतों का उत्तर से दक्षिण दिशा में व अल्पायन पर्वतों (आल्पस तथा हिमालय) का पहले से पश्चिम में विस्तार होना थी । इस समस्या के सन्दर्भ में उन्होंने अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया । टेलर ने सिद्धान्त का प्रारम्भ क्रिटेशियस युग से किया । उनके अनुसार महाद्वीपों का प्रवाह विषवत रेखा की ओर हुआ जिसका प्रमुख कारण ज्वारीय शक्ति माना है ।

वेगनर का महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त

प्रसिद्ध जर्मन जलवायुविद् अल्फ्रेड लोथर वेगनर (Afred Lothar Wegener – 1880–1930) ने 1915 में 'महाद्वीप तथा महासागरों की उत्पत्ति' (Origin of Continents and Oceans) नामक पुस्तक में बताया कि वर्तमान में वितरित समस्त महाद्वीप पुराने वक्त में एक बृहद महाद्वीप के रूप में परस्पर संयोजित थे । वेगनर की इस पुस्तक का 1920 तक अंग्रेजी अनुवाद नहीं होने से विचार का अधिक प्रसार नहीं हो सका । वेगनर की इस संकल्पना के प्रमुख आधार महाद्वीपों की आकृति व भू-गर्भिक प्रमाण रहे थे । वेगनर एक जलवायु वैज्ञानिक था जिसका प्रमुख ध्येय यह समझना था कि विश्व की जलवायु में मुख्य रूप से क्या भिन्नताएं है व इनके क्या कारण रहे हैं? उन्हें पृथ्वी के कई जगहों पर ऐसे प्रमाण मिले, जिनके आधार पर जलवायु परिवर्तन सम्बन्धी परिकल्पना को आधार मिले । इस समस्या के समाधान हेतु उन्होंने कई प्रमाण एकत्रित किये ।

अफ्रीका तथा ब्राजील से जीवाश्म प्राप्त किए । उन्होंने महाद्वीपों की विभिन्न अवस्थाओं का मानचित्रण किया । वेगनर के दिमाग में पृथ्वी की पुरानी जलवायु के अध्ययन के दौरान कुछ सवाल आये जिनके आधार पर उन्होंने अपना प्रवाह सिद्धान्त प्रस्तुत किया । ये प्रश्न निम्नलिखित थे–

1. लन्दन, पेरिस व ग्रीनलैण्ड में उष्ण कटिबन्धीय फर्न कैसे विकसित हुए ।
2. टुण्ड्रा जलवायु के ठंडे प्रदेशों में कोयला कैसे पाया जाता है ।
3. ब्राजील, प्रायद्वीपीय आस्ट्रेलिया, भारत व कांगो बेसिन में हिमावरण क्यों पाया गया ।

इस प्रकार उन्हें पृथ्वी पर वनस्पति के ऐसे प्रमाण मिले जिनसे उन स्थानों पर परिवर्तन में विकसित होने में उल्टी दशाएँ पायी जाती हैं । इसी प्रकार कई संसाधनों (कोयला) का वितरण भी पृथक क्षेत्रों में मिलता है जिनका वर्तमान दशाओं में वहाँ मिलना सम्भव नहीं है । इन सभी प्रश्नों पर इस विस्तार से चिन्तन करने के उपरान्त वेगनर महोदय के मस्तिष्क में दो परिकल्पनाएँ पैदा हुई जो निम्नलिखित हैं–

1. समस्त महाद्वीप वर्तमान स्थानों पर स्थायी रहे हों व जलवायु कटिबन्धों में एक जगह से दूसरे जगह पर स्थानान्तरण हुआ हो । ज्ञातव्य है कि जलवायु कटिबन्धों का स्थानान्तरण पृथ्वी पर सूर्य की किरणों के चमकने पर आश्रित होता है अर्थात् पृथ्वी एवं सूर्य के सम्बन्ध परिवर्तित हुए हों । सूर्य का अपनी सीमाओं पर नियन्त्रण खोना वेगनर को असम्भव प्रतीत हुआ व इस सन्दर्भ में उन्हें प्रत्यक्ष प्रमाण भी नहीं मिले ।
2. समस्त जलवायु कटिबन्ध स्थायी रहे होंगे, व स्थल खण्डों (महाद्वीप) का स्थानान्तरण हुआ होगा । इस सम्भावना ने वेगनर महोदय को सबसे ज्यादा प्रभावित किया व महाद्वीपों के प्रवाह सम्बन्धी सिद्धान्त प्रस्तुत किया ।

सिद्धान्त का स्वरूप

वेगनर ने पुराजलवायु शास्त्र, पुरा वनस्पति शास्त्र व भू-विज्ञान आदि के प्रमाणों के आधार पर यह स्वीकार कर लिया था कि कार्बोनीफेरस युग में सभी महाद्वीप एक ही स्थलखण्ड के रूप में संयोजित थे । वेगनर ने इसको जिया (Pangaea) नाम दिया । पैंजिया जो अंग्रेजी के Pangaea का पर्याय है, Pan = all (सभी) व gaea = मंतजी (पृथ्वी) शब्दों से मिलकर बना है । वेगनर ने यह माना कि पैंजिया के चारों ओर एक विशाल महासागर था, जिसे 'पेन्थालासा' (Panthalassa) नाम दिया गया । पैंथालासा अंग्रेजी के Panthalassa का पर्याय है जो Pan & all (सभी) व thalassa = Oceans (महासागर) से मिलकर बना है ।

पैंजिया के उत्तर भाग को लारेशिया व दक्षिणी भाग को गोंडवाना लैण्ड के नाम से जाना जाता है । ग्रीनलैण्ड, लारेशिया में उत्तरी अमेरिका व यूरेशिया को व गोण्डवाना लैण्ड से दक्षिणी अमेरिका, मेडागास्कर, अफ्रीका, भारत, आस्ट्रेलिया व अण्टार्कटिका को सम्मिलित किया गया है । लारेंशिया व गोण्डवाना लैण्ड इनके बीच में स्थित एक लम्बी व उथली भू-अभिनति के माध्यम से विभक्त थे । इसे वेगनर ने टेथीज भू-अभिनति कहा है । कार्बोनिफेरस युग में दक्षिणी ध्रुव अफ्रीका के नेटाल (डर्बन) के पास व उत्तरी ध्रुव प्रशान्त महासागर के बीच स्थित था । पैंजिया महाद्वीप में तीन परतें थीं । ऊपरी सियाल परत, मध्यवर्ती भाग सीमा व केन्द्रीय भाग नीचे से निर्मित माना है ।

वेगनर ने महाद्वीपीय भाग सियाल से व महासागर सीमा से निर्मित माने हैं, उनके अनुसार सियाल सीमा पर बिना किसी अवरोध के तैर रहा है । यह महाद्वीप लगभग 300 मिलियन वर्ष पहले कार्बोनिफेरस काल में प्रवाहित होना आरम्भ हुआ जिसके परिणामतः पृथ्वी का वर्तमान स्वरूप व महाद्वीपों की सापेक्षिक स्थिति प्राप्त हुई । वेगनर महोदय ने पैंजिया के प्रवाह की निम्नलिखित दो दिशायें बतायी थीं :

i. भूमध्य रेखा की ओर महाद्वीपों के प्रवाहित होने का कारण गुरुत्वाकर्षण व द्रव के उछाल (Byouancy) का पारस्परिक सम्बन्ध रहा था भूमध्यरेखा की ओर विस्थापन से अफ्रीका एवं यूरेशिया परस्पर निकट आये जिस कारण टेथीज सागर में निक्षेपित तलछट वलित होकर ऊपर उठी व अल्पाइन पर्वतों (हिमालय, आल्पस व एटलस) का सृजन हुआ । विषुवतीय प्रवाह के कारण ही प्रायद्वीपीय भारत व आस्ट्रेलिया, अफ्रीका व अण्टार्कटिका से पृथक हुए ।

ii. पश्चिम में प्रवाहित होने की वजह से सूर्य व चन्द्रमा की ज्वारीय शक्ति को माना है । पश्चिमी दिशा में विस्थापन के परिणामतः उत्तरी अमेरिका व दक्षिणी अमेरिका, यूरोप व अफ्रीका से पृथक हुए व अटलांटिक महासागर का उद्भव हुआ । वेगनर महोदय ने विस्थापन के माध्यम से महाद्वीपों एवं महासागरों के प्रादुर्भाव के साथ ही पर्वत सृजन को भी स्पष्ट किया है । उनके अनुसार विषुवत् रेखीय विस्थापन के कारण टर्शियरी काल में अल्पाइन पर्वत बने जबकि पश्चिम में विस्थापित होने से रॉकी व एण्डीज पर्वतों का सृजन हुआ ।

महाद्वीपीय प्रवाह के पक्ष में प्रमाण

वेगनर ने अपने महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत के पक्ष में कई प्रमाण एकत्रित किए । कुछ महत्वपूर्ण प्रमाणों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है

1. **पर्वत पट्टी** – भूवैज्ञानिक क्रियाओं के फलस्वरूप 47 करोड से 35 करोड वर्ष पुरानी पट्टी का निर्माण एक अविच्छिन्न कटिबन्ध के रूप में हुआ था । ये पर्वत अब अटलांटिक महासागर द्वारा पृथक कर दिए गए हैं ।

2. **जीवाश्म** – वेगनर ने अपने महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत को जीवाश्मों के वितरण के आधार पर स्पष्ट करने का प्रयास किया । उदाहरणतया, ग्लोसोप्टैरिस नामक पौधे तथा मैसोसौरस एवं लिस्ट्रोसौरस नामक जंतुओं के जीवाश्म भारत, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका, फाकलैण्ड द्वीप, अण्टार्कटिक महाद्वीप आदि में पाये जाते हैं । वर्तमान समय में ये सभी प्रदश एक-दूसरे से बहुत दूर स्थित हैं और इस प्रकार का वितरण महाद्वीपों के विस्थापन द्वारा ही स्पष्ट हो सकता है ।

3. **भूवैज्ञानिक अनुरूपता** - अफ्रीका के घाना तट पर नदी जलोढ में स्वर्ण निक्षेपों की उपस्थिति तथा उसी क्षेत्रो में इन निक्षेपो की उद्गम शैलों की अनुपस्थिति एक महत्वपूर्ण तथ्य है । लगभग 5,000 कि.मी. चौडे अटलांटिक महासागर के पार दक्षिणी अमेरिका में ब्राजील के बेलेन साओ में स्वर्ण-युक्त शिराओं वाले शैल मिलते हैं, परंतु निकटवर्ती तटीय पटी के जनो में सोने के निक्षेप नहीं हैं । इतने दूर स्थित क्षेत्रो में इतनी समानताएँ महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत के अनरूप हैं । इससे यह स्पष्ट होता है कि दक्षिणी अमेरिका तथा अफ्रीका पेंजिया के भाग थे, जो बाद में एक-दूसरे से दूर चले गए । इस तथ्य की पति अपीका तथा दक्षिणी अमेरिका के मानचित्रों को एक साथ व्यवस्थित करके की जा सकती है ब्राजील में सोनायक्त अवसाद ढाल के नीचे परिवाहित करके लाया गया और मिट्टी में जमा किया गया । यह पट्टी वर्तमान घाना तट है ।

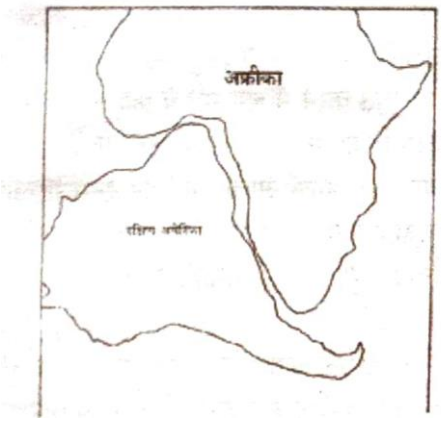

4. पुराजलवायवी एकरूपता – पुराजलवायु का अर्थ पृथ्वी के भूगर्भिक इतिहास के किसी प्राचीन काल मे पाई जाने वाली जलवायु है । पर्मोकार्बनी काल के मोटे हिमानी निक्षेप उरुग्वे ब्राजील, अफ्रीका, दक्षिणी भारत, दक्षिणी आस्ट्रेलिया तथा तस्मानिया मे दिखाई देते है इन अवसादो की प्रकृति मे एकरूपता पाई जाती है जिससे यह सिद्ध होता है की भू वैज्ञानिक अतीत काल में ये समस्त महाद्वीप देश एक दूसरे से जुडे हुए थे और इनमे एक जैसी जलवायु पाई जाती है । आज ये भू–भाग भिन्न –भिन्न जलवायु क्षेत्रो –उष्णकटिबंधीय से शीतोष्ण मे स्थित है और बडे–बडे महासागरों द्वारा एक दूसरे से पृथक किए गए है ।

5. प्रवाल - प्रवाल एक प्रकार की कैल्शियमयुक्त चट्टान है जो पोलिप नामक सूक्ष्म समुद्री जीव के अस्थिपंजर से बनती है । ये लगभग 200 से0 मी0 से तापमान वाले गर्म जल से पनपते है । अतः ये मुख्यतः 300 उत्तर तथा 300 दक्षिण अक्षांशो के बीच ही रहते है । इस क्षेत्र से बाहर के महाद्वीपो पर प्रवालों को पाया जाना इस बात का ठोस प्रमाण है कि प्राचीन भू–वैज्ञानिक काल मे ये महाद्वीप भूमध्य रेखा के निकट स्थित थे । महाद्वीपो का संचलन उत्तर दिशा की ओर हुआ है जिस कारण ये प्रवाल वर्तमान शीत एवं उष्ण जलवायु का अनुभव करते है ।

6. ध्रुवों का घुमना पुराचुम्बक भू–वैज्ञानिक प्राचीन काल मे पृथ्वी का चुम्बकत्व से हमें महाद्वीपो के पैंडिया के रूप मे एक दूसरे से जुडे होने का सबसे शक्तिशाली प्रमाण मिला है मैग्मा, लावा, तथा असंगत अवसाद ने उपस्थित चुम्बकीय प्रवृति वाले खनिज जैसे मेग्नेटाइट, हेमेटाइट, इल्मेनाइट, तथा पाइरोटाइट इसी प्रवृति के कारण उस समय के चुंबकीय क्षेत्र के समानातर एकत्रित हो गए । यह गुण शैलो में स्थाई चुम्बकत्व के रूप मे अभिलेखित किया जाता है । इसे ध्रुवों का घूमना कहते है ।

वेगनर के प्रवाह सिद्धान्त का मूल्यांकन

वेगनर का आरम्भिक काम प्राचीन जलवायु का अध्ययन प्रस्तुत करना था । किन्तु जैसे ही उन्हें महाद्वीपीय प्रवाह से जुडी व्यवस्था में विश्वास हुआ तो वे साक्ष्य को एकत्रित करने में लग गये व कई गलती कर बैठे । यद्यपि उन्होंने महाद्वीपीय तटों के बीच सादृश्य स्थापित करने का वैज्ञानिक काम किया परन्तु अपनी परिकल्पना के सच को प्रमाणित करने हेतु कई गलतियों को नजरअन्दाज किया जिस कारण उनके विचारों की अनेक आलोचनाएँ हुई इनमें निम्नलिखित मुख्य है–

1. जोड मिलाने वाले प्रमाणों की आलोचना हुई अन्ध महासागर के दोनों ओर स्थित महाद्वीपों में कुछ सादृश्य जरूर है परन्तु उन्हें एक ही भूखण्ड के दो भाग मानना उचित नहीं है, क्योंकि दक्षिणी अमेरिका एवं गिनी की खाडी की संगत भुजाओं में 15 डिग्री का अन्तर आता है ।

2. वेगनर के माध्यम से बताये गये महाद्वीपों को बहाने वाले बल भी पर्याप्त नहीं है । उन्होंने पश्चिम में प्रवाहित होने हेतु जो ज्वारीय बल बताया था वह उनके माध्यम से बताये गये बल की अपेक्षा में 10 अरब गुणा अधिक होना चाहिए तभी महाद्वीपों को प्रवाहित कर सकेगा ।

3. उनके अनुसार सियाल में बनी महाद्वीप सीमा से निर्मित महासागरों पर तैर रहे है, जिस वजह से ही पश्चिम में प्रवाह में सियाल में दबाव पडने से पश्चिम कार्डिलेरा का सृजन हुआ जो झूठ है क्योंकि यदि सीमा को कठोर मानते है तो महाद्वीप बह नहीं सकते । और नरम मानते है तो पर्वत बन नहीं सकते है ।

4. वेगनर के कथानानुसार कि ग्लोसोप्टोरिस वनस्पति का वितरण भारत, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, फाकलैण्ड, दक्षिणी अमेरिका आदि में कार्बोनीफेरस युग की शैली में पाया जाता है, जो विस्थापन के कारण वितरित हुई । जबकि यह वनस्पति उत्तरी-पश्चिमी अफगानिस्तान व साइबेरिया आदि में भी प्राप्त होती है ।

5. वेगनर ने पुराजीवी काल में हिमानीकरण की वजह से दक्षिणी गोलार्द्ध के समस्त महाद्वीपों का हिमावतरित होना बताया । परन्तु वहाँ पर उष्ण कटिबन्धीय जलवायु के पौधों के जीवाश्म मिलते है । स्पष्ट है कि हिमानीकरण के माध्यम से महाद्वीपों का एक साथ जुडा होने व उपरांत में प्रवाहित होने का प्रमाण स्पष्ट करने में मुश्किल आती है क्योंकि जलवायु का निर्धारण अक्षांशों के अनुरूप होता है ।

6. वेगनर ने महाद्वीपों का विस्थापन सिर्फ उत्तर तथा पश्चिम में ही माना है जबकि टेलर ने महाद्वीपों का विस्थापन ध्रुवों से प्रत्येक दिशा में होना बताया है । उपरोक्त आलोचनाओं के उपरांत भी वेगनर का महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त महीद्वीपों, महासागरों व पर्वतों के सृजन में मध्यपूर्व जानकारी प्रस्तुत करता है । सागर नितल में प्रसरण व प्लेट विवर्तनिकी मॉडल के माध्यम से वेगनर की विचारधारा की पुनर्स्थापना हुई है व महाद्वीपीय प्रवाह सिद्धान्त को वैज्ञानिक स्वरूप मिल गया है ।

सागर-नितल का प्रसरण

भू-आकृति विज्ञान में सागर नितल प्रसरण का विचार एक नवीन विकास है जो महाद्वीपीय प्रवाह के सिद्धान्त को उचित व्यक्त करता है । इसका प्रतिपादन संयुक्त रूप से प्रिस्टन विश्वविद्यालय के प्रो. हैरी हेस व राबर्ट डीट्ज ने 1960 में किया ।

भू-आकृति विज्ञान सागर नितल प्रसरण का विचार सागरीय भू-वैज्ञानिकों व भू-भौतिकविदों के शामिल परीक्षण के विश्लेषण का परिणाम है इनमें मारिस एविंग व उसके सहयोगी शोधकर्ताओं की प्रमुख भूमिका रही है ।

हेस और डीटज ने इन सागरीय तलों के प्रसरण को ऐसी प्रक्रिया या विधि बताई जो पर्वत श्रृंखला का सृजन करती है व महाद्वीपीय संचलन को गति देती है । हेस के अनुरूप अन्तःसागरीय पर्वत श्रृंखलाएं

जिन्हें मध्य महासागरीय कटक कहा जाता है, इसका सृजन उष्ण क्षेत्रों से तप्त मैग्मा के ऊपर की ओर प्रवाह से हुआ है । ये उष्ण क्षेत्र ऊपरी मैण्टिल, दुर्बलतामण्डल व इससे गहरे सम्बन्धित क्षेत्र माने गये हैं । जब मैण्टिल से संवहन के माध्यम से मैग्मा ऊपर भूपटल पर आता है तो भू–पटल विभक्त हो जाता है व मैग्मा सागरीय भागों में फैलकर ठण्डा होकर नया सागरीय नितल का रूप ले लेता है फलतः कटक का सृजन हो जाता है ।

महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त की आलोचना

1. वैगनर के अनुसार पैंजिया का विभाजन चंद्रमा के गुरुत्वाकर्षण बल के कारण हुआ था जो कि असंभव है ।
2. वैगनर के अनुसार महाद्वीप महासागरीय सतह पर विस्थापित होते है जोकि Sima से निर्मित है परन्तु वास्तविकता में है ।

महाद्वीप और महासागर दोनो ही भू–पर्पटी का भाग है । वैगनर के अनुसार महाद्वीप किनारो पर अवसाद एकत्रित होते है एवं इन्ही अवसादों में महाद्वीप द्वारा लगाए जा रहे बल के कारण बलन पडते है जिससे वलित पर्वतो का निर्माण होता है जैसे रॉकी पर्वत श्रृंखला, एंडीज पर्वत श्रृंखला वैगनर महाद्वीप के मध्य में उपस्थित पर्वतों के निर्माण की व्याख्या नही कर पाए । (वास्तविकता में पर्वतो का निर्माण इस प्रकार नहीं हुआ है)

वैगनर के अनुसार भूकंप की उत्पत्ति विस्थापन के दौरान मिले अचानक अवरोध से होती है, परन्तु वैगनर महाद्वीपो के मध्य में आने वाले भूकंपो को स्पष्ट नही करते है साथ ही साथ वैगनर अपने सिद्धान्त में बिना अवरोध के विस्थापन की धारणा को ही गलत साबित करते है ।

वैगनर के अनुसार ज्वालामुखी की क्रिया महाद्वीपो में दरार आने से होती है, परन्तु वैगनर महासागरो में होने वाली ज्वालामुखी घटना को स्पष्ट नही कर पाते ।

निष्कर्ष

वैगनर द्वारा दिए गए सिद्धान्त को वैश्विक समूह ने नकार दिया क्योंकि उनका सिद्धान्त वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित नही था, जबकि वैगनर के सिद्धान्त को नकार दिया गया परन्तु इनके इस सिद्धान्त ने भविष्य में वैज्ञानिकों के लिए एक दिशा का काम किया क्योंकि इनके द्वारा दिए गए साक्ष्य यथार्थ थे ।

प्लेट विवर्तनिकी

Plate Tectonics भौतिक भूगोल, भू-आकृति विज्ञान एवं भू-विज्ञान में प्लेट विवर्तनिकी का विचार नवीन है, जिस आधार पर महाद्वीपों व महासागरों की उत्पत्ति, ज्वालामुखी एवं भूकम्प की क्रिया तथा वलित पर्वतों के निर्माण आदि का वैज्ञानिक स्पष्टीकरण दिया जा सकता है । प्लेट विवर्तनिकी एक वैज्ञानिक सिद्धान्त है जो पृथ्वी के स्थलमण्डल में बडे पैमाने पर होने वाली गतियों की व्याख्या प्रस्तुत करता है । साथ ही महाद्वीपों, महासागरों और पर्वतों के रूप में धरातलीय उच्चावच के निर्माण तथा भूकम्प और ज्वालामुखी जैसी घटनाओं के भौगोलिक वितरण की व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास करता है । यह सिद्धान्त बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में आभिकल्पित महाद्वीपीय विस्थापन नामक संकल्पना से विकसित हुआ जब 1960 के दशक में ऐसे नवीन साक्ष्यों की खोज हुई जिनसे महाद्वीपों के स्थिर होने की बजाय गतिशील होने की अवधारणा को बल मिला ।

इन साक्ष्यों में सबसे महत्वपूर्ण है पुराचुम्बकत्व से सम्बन्धित साक्ष्य जिनसे सागर नितल प्रसरण की पुष्टि हुई । हैरी हेस के द्वारा सागर नितल प्रसरण की खोज से इस सिद्धान्त का प्रतिपादन आरंभ माना जाता है और विल्सन, मॉर्गन, मैकेंजी, ओलिवर, पार्कर इत्यादि विद्वानों ने इसके पक्ष में प्रमाण उपलब्ध कराते हुए इसके संवर्धन में योगदान किया । हाल ही (1968) में वेगनर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत व महासागरों की तली पर खोजे गए कई नये लक्षणों जैसे मध्य-महासागरीय पर्वत-श्रेणियों, महासागरीय खाइयों आदि को मिलाकर एक नये सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है जिसे प्लेट विवर्तनिकी सिद्धांत (Theory of Plate Tectonics) कहते हैं । सच तो यह है कि महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत इस की आधारशिला है, क्योंकि प्लेट विवर्तनिकी सिद्धांत वास्तव में वेगनर के सिद्धांत का ही पुनर्वर्द्धित रूप है । इस सिद्धांत ने वेगनर के सिद्धांत की आलोचनाओं का मुँह-तोड जवाब दिया है और हर तथ्य का संतोषजनक उत्तर प्रस्तुत किया है । वास्तव में प्लेट विवर्तनिकी सिद्धांत ने महाद्वीपों तथा महासागरों, मध्य-महासागरीय पर्वत-श्रेणियों, महासागरीय खाइयों, ज्वालामुखियों व भूकंपों की उत्पत्ति के विषय में पुरानी धारणाओं व सिद्धांतों में आमूल परिवर्तन कर दिया है । अतः इसी सिद्धान्त ने अनेक घटनाओं का संतोषजनक उत्तर दिया है ।

प्लेट विवर्तनिकी सिद्धांत

इस महान सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए विश्व में समय-समय पर होने वाली घटनाओं एवं खोजों ने सहायता की है । पृथ्वी व महाद्वीपों-महासागरों से जुडी कई समस्याओं व प्रश्नों ने भी वैज्ञानिकों को इस सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए प्रेरित किया है । विश्व के भौतिक मानचित्र को देखकर अनायास ही हमारे मन में कई प्रश्न उभर कर आते हैं जैसे महाद्वीपों व महासागरों की आकृति एवं स्थिति ऐसी क्यों है? पर्वत-पट्टियाँ जहाँ हैं, वहीं क्यों हैं? भूकम्प व ज्वालामुखी पट्टियाँ जहाँ स्थित है, वहीं क्यों हैं? उपरोक्त तथ्यों पर गहनता से विचार करने पर कई बार आश्चर्य भी होता है । हमारी पृथ्वी से संबंधित ये कुछ ऐसे चमत्कारपूर्ण तथ्य है, जिन्होंने कई वैज्ञानिकों को इस बात के लिए प्रेरित किया है कि संभवतः इन सभी विशाल भू-लक्षणों की उत्पत्ति के पीछे किसी एक ही शक्ति का हाथ है ।

तकरीबन सौ-सवा सौ वर्षों से वैज्ञानिक इसी शक्ति की खोज कर रहे थे । इसी खोज का परिणाम है, प्लेट विवर्तनिकी सिद्धान्त ।

वेगनर के विस्थापन सिद्धान्त का अध्ययन पाठक पूर्ण रूप से कर चुके है और समझ चुके है कि वेगनर ने विस्थापन सिद्धान्त का प्रतिपादन महाद्वीपों की बदलती हुई जलवायु व इसके बीच में स्थित समांतरता को समझाने के दृष्टिकोण से किया था । उसने अपने सिद्धान्त के पक्ष में कई भू-वैज्ञानिक, जलवायु-संबंधी, जीवाश्मी व अन्य ठोस प्रमाण भी प्रस्तुत किए, पर न तो वेगनर और न ही उसके समर्थक इस बात पर प्रकाश डाल सके कि महाद्वीपों का संचरण क्यों तथा कैसे हुआ । सन् 1930 में वेगनर की मृत्यु के कारण महाद्वीपीय विस्थापन पर होने वाला वाद-विवाद कुछ ढीला पड गया, क्योंकि भू-भौतिक-विज्ञानियों को पृथ्वी के भौतिक गुणों का अध्ययन करने हेतु संचरण का कोई संकेत नहीं मिला ।

महाद्वीपीय विस्थापन पर एक गोष्ठी का आयोजन सन् 1956 ई. में टस्मानिया के भू-विज्ञानी प्रोफेसर एस. वारेन केरी (S-Warren Carey) द्वारा किया गया और विविध महाद्वीपों को एक-दूसरे में सटाने की विधि की घोषणा की । इससे भी महाद्वीपीय विस्थापन एक बहुचर्चित एवं विवाद का विषय बन गया । इसी समय एक नयी खोज हुई जिसका प्लेट विवर्तनिकी सिद्धान्त के विकास में महत्वपूर्ण हाथ है। भूकम्पी तरंगों की मदद से भू-भौतिकी-विज्ञानियों ने भू-गर्भ में एक ऐसे क्षेत्र की भू-आकृति विज्ञान उपस्थिति का बोध कराया जो शैल प्लास्टिक के समान आचरण करती है । इस क्षेत्र में गजरते हुए पी. तरग का वग कुछ कम हो जाता है जिसके कारण इसे निम्न-वेग क्षेत्र (Low Velocity Zone) भी कहा गया । इसका नाम है एस्थेनोस्फीयर (Asthenosphere) या दुर्बल मण्डल (Weak Zone) । इसकी स्थिति भू-गर्भ में 100-350 कि. मी. के मध्य है । इसके ऊपर का 100 कि. मी. मोटा हिस्सा जो कठोर, सुदृढ एवं ठोस शैलों का बना है उसे लिथोस्फीयर कहते हैं ।

लिथोस्फीयर दस बडे तथा अनेक छोटे-छोटे भागों में विभाजित है । ये लिथोस्फीयर के टुकडे अपने नीचे स्थित एस्थेनोस्फीयर पर इसी तरह तैर रहे है जैसे समुद्र में प्लावी हिमखण्ड तैरते हैं । यह एक महान खोज थी जिसने प्लेट विवर्तनिकी सिद्धांत की स्थापना में काफी योगदान दिया । यह स्मरणीय है कि समस्त भू-पृष्ठ दो भागों में विभाजित है ।

महाद्वीपीय भू-पृष्ठ कुल भू-पृष्ठ का मात्र 35% है, जबकि महासागरीय भू-पृष्ठ समस्त भू-पृष्ठ का हिस्सा घेरे हुए है । अभी तक जो सिद्धांत महाद्वीपों-महासागरों तथा पर्वतों की उत्पत्ति समझाने हेतु प्रतिपादित किए गए थे, सभी महाद्वीपीय भू-पृष्ठ जो समस्त भू-पृष्ठ का मात्र 35 भाग है, पर आश्रित थे, सन् 1950 ई. तक महासागरीय भू-पृष्ठ के बारे में ज्ञान बहुत कम था । सन् 1950 ई. तक महासागरीय भू-पृष्ठ के विषय में कई तथ्यों का रहस्योद्घाटन हुआ । महासागरीय पर्वत-श्रेणियां खोजी जा चुकी थी । महासागरीय खाइयों के संबंध में कई तथ्यों का ज्ञान भी हो चुका था । इतना ही नहीं सन् 1962 में प्रो. एच. एच. हैस (H. H. Hess) ने महासागरों के धरातलों के प्रसरण तथा इनके दोनों तरफ के संचरण का सुझाव दिया था और शीघ्र ही महासागरीय धरातल में उपलब्ध चुम्बकीय पट्टियों (Magnetic Strippings) की मदद से हैस के सुझाव की पुष्टि भी हो गई । इस प्रकार स्पष्ट है कि नई-नई खोजों तथा श्रृंखला की जानकारी बनी रही । एक के पश्चात् एक खोज होती रही जिससे वैज्ञानिकों के ज्ञान में आश्चर्यजनक बढोत्तरी हुई जिसका परिणाम है, प्लेट विवर्तनिकी सिद्धांत ।

सन 1967 के अंत में कई भू-विज्ञानी, भू-भौतिकी-विज्ञान, जीवाश्म विज्ञानी एवं अन्य विषय के पण्डितों ने सामूहिक रूप से इस सिद्धांत को प्रतिपादित किया । सभी विषय के वैज्ञानिकों के समूह ने इसके पृथक-पृथक पक्षों पर कार्य किया । अतः इस क्रांतिकारी सिद्धांत के प्रतिपादन का श्रेय न तो किसी एक वैज्ञानिक को दिया जा सकता है और न ही एक ही विषय के वैज्ञानिकों के समूह को । इसलिए आज तक यह सिद्धान्त टिका हुआ है और आगे भी टिका रहेगा ।

सिद्धांत की रूपरेखा

एक विवर्तनिक प्लेट ठोस चट्टान का विशाल व अनियमित आकार का खंड है, जो महाद्वीपीय व महासागरीय स्थलमंडलों से मिलकर बना है । ये प्लेटें दुर्बलतामंडल (Asthenosphere) पर एक दृढ इकाई के रूप में क्षैतिज अवस्था में चलायमान हैं । प्लेट विवर्तनिकी के सिद्धांत के अनुसार पृथ्वी का स्थलमंडल सात मुख्य प्लेटों व कुछ छोटी प्लेटों में विभक्त है ।

इस सिद्धान्त को वेगनर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त का विकास माना जाता है । स्थलीय दृढ भू-खण्ड को प्लेट कहते हैं । पृथ्वी का निर्माण विभिन्न प्लेटों से हुआ है । ये प्लेटें अपने ऊपर स्थित महाद्वीप तथा महासागरीय भागों को अपने प्रवाह के साथ स्थानान्तरित करती हैं । पुराचुम्बकत्व एवं सागर नितल प्रसरण के प्रमाणों से स्पष्ट हो गया है कि महासागरीय नितल में प्रसार हो रहा है ।

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन हैरी हेस ने किया था । किन्तु इसकी वैज्ञानिक व्याख्या श्री मोर्गन ने की । यह सिद्धान्त महाद्वीपीय प्रवाह, समुद्र तली प्रसारण, ध्रुवीय परिभ्रमण, द्वीप चाप व महासागरीय कटक आदि पर प्रकाश डालता है । इस सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी की भू-पर्पटी अनेक छोटी व बडी प्लेटों में विभक्त है । ये प्लेटें 100 km की मोटाई वाले स्थल मण्डल से निर्मित होती हैं । एवं दुर्बल मण्डल (एस्थेनोस्फेयर) पर तैरती हैं । जो पूर्णतया Sima का बना होता है । व अपेक्षाकृत अधिक घनत्व का होता है । प्लेटीय संचलन का मुख्य कारण तापीय संवहन तंरगों की चक्रीय प्रक्रिया का होना है । प्लेटों की संख्या 100 तक बताई गई है । किन्तु अभी तक केवल 7 बडी व 20 छोटी प्लेटों को ही पहचाना जा सका है । बडी प्लेटें इस प्रकार है-

1. अंटार्कटिक प्लेट,
2. उत्तरी अमेरिकी प्लेट,
3. दक्षिणी अमेरिकी प्लेट,
4. प्रशान्त महासागरीय प्लेट,
5. इंडो-ऑस्ट्रेलियन प्लेट,
6. अफ्रीकी प्लेट व यूरेशियाई प्लेट ।

छोटी प्लेटों में कोकास प्लेट, नजका प्लेट, अरेबियन प्लेट, फिलीपीन प्लेट, कैरोलिन प्लेट, फ्यूजी प्लेट, स्कोशिया प्लेट, कैरेबियन प्लेट, तिब्बत प्लेट, सोमाली प्लेट, नुबियन प्लेट, जुआन-डी-फूका प्लेट एवं बर्मी प्लेट आदि प्रमुख हैं । प्लेटें पूर्णतः महासागरीय, पूर्णतः महाद्वीपीय अथवा मिश्रित हो सकती हैं । जो इस बात निर्भर करता है कि प्लेट का अधिकांश भाग किससे सम्बद्ध है । जैसे प्रशान्त

प्लेट पूर्णतया महासागरीय है एवं यूरेशियाई व अंटार्कटिका प्लेट पूर्णतया महाद्वीपीय है । जबकि अमेरिकी व भारतीय प्लेट मिश्रित प्रकार का है ।

प्लेटों के किनारे ही भू-गर्भिक क्रियाओं के दृष्टिकोण से सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते है । क्योंकि इन्हीं किनारों के सहारे भूकम्पीय, ज्वालामुखीय तथा विवर्तनिक घटनाएं घटित होती हैं । सामान्तया प्लेटों के किनारे निम्न प्रकार के होते है ।

रचनात्मक किनारा

तापीय संवहन तरंगों के उपरिमुखी स्तम्भों के ऊपर अवस्थित दो समान अथवा असमान घनत्व तथा मोटाई वाली प्लेटें एक दूसरे के विपरीत दिशा में गतिशील होती है । तो दोनों के मध्य भू-पर्पटी में दरार बन जाती है । जिसके सहारे एस्थेनोस्फेयर का मैग्मा ऊपर आता है और ठोस होकर नवीन भू-पर्पटी का निर्माण करता है । अतः इन प्लेट किनारों को रचनात्मक किनारा कहते है । तथा इस तरह की प्लेटें अपसारी प्लेटें कहलाती है । इसका सर्वोत्तम उदाहरण मध्य अटलांटिक कटक है ।

विनाशात्मक किनारा

तापीय संवहन तरंगों के अधोमुखी स्तम्भों के ऊपर अवस्थित दो प्लेटें आमने-सामने संचालित होकर टकराती है । तो अधिक घनत्व वाली प्लेट कम घनत्व वाली प्लेट के नीचे धंस जाती है । इस क्षेत्र को बेनी ऑफ मेखला या बेनी ऑफ जॉन कहते है । चूँकि यहाँ प्लेट का विनाश होता है । अतः इसे विनाशात्मक किनारा कहते है । इन प्लेटों को अभिसारी प्लेट कहा जाता है । अभिसारी प्लेट की अंतःक्रिया तीन प्रकार से हो सकती है ।

1. जब एक अभिसारी प्लेट महाद्वीपीय तथा दूसरी महासागरीय हों तो महासागरीय प्लेट अधिक भारी होने के कारण महाद्वीपीय प्लेट के नीचे अधिगमित हो जाती है जिससे एक गर्त का निर्माण होता है एवं उसमें अवसादों के निरन्तर जमाव व बलन से मोडदार पर्वतों का निर्माण होता है । रॉकी व एंडीज पर्वत इसके मुख्य उदाहरण है । बेनी ऑफ जॉन या अधोगमित क्षेत्र का पिघला हुआ मैग्मा भू-पर्पटी को तोडते हुए ज्वालामुखी का निर्माण करता है । जैसे अमेरिकी प्लेट का पश्चिमी किनारा जहाँ पर्वतों का निर्माण हुआ है, ज्वालामुखी उद्गार देखने को मिलते है । एंडीज के आंतरिक भागों में कोटोपेक्सी व चिंबाराजो जैसे ज्वालामुखी का पाया जाना इस अंतःक्रिया द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है ।
2. जब दोनों प्लेट महासागरीय हों तो अपेक्षाकृत भारी प्लेट हल्की प्लेट के नीचे धंस जाती है । जिससे के फलस्वरूप महासागरीय गर्तों और ज्वालामुखी द्वीपों की एक श्रृंखला सी बन जाती है ।
3. जब दोनों प्लेट महाद्वीपीय हों तो अधिगमित क्षेत्र इतना प्रभावी नहीं हो पाता कि ज्वालामुखी उत्पन्न हो सकें । परन्तु ये क्षेत्र भू-गर्भिक रूप से अस्थिर होते है । अतः यहाँ बडे मोडदार पर्वतों का निर्माण होता है । यूरेशियन प्लेट व इंडियन प्लेट के टकराने से टेथिस भूसन्नति के अवसादों के बलन व प्लेटीय किनारों के मुडाव से उत्पन्न हिमालय पर्वत इसका अच्छा उदाहरण है ।

संरक्षी प्लेट

जब दो प्लेट एक दूसरे के समानान्तर खिसकती हैं तो उनमें कोई अन्तः क्रिया नहीं हो पाती है । अतः इन्हें संरक्षी किनारा कहते हैं । इन प्लेटों के खिसकने के कारण रूपान्तरित भ्रंश का निर्माण होता है । तथा प्लेट के किनारा के धरातलाय क्षेत्र में अन्तर नहीं होता है । इस प्लेट सीमा को शीयर सीमा कहते हैं । कैलिफोर्निया के निकट निर्मित सान एंड्रियास फॉल्ट रूपान्तरित भ्रंश का उदाहरण है ।

प्लेटों की गति के कारण

पृथ्वी की सभी छोटी तथा बडी प्लेटें गतिशील हैं । इनकी गति करने के निम्नलिखित कारण हैं ।

1. पृथ्वी का घूर्णन

पृथ्वी के धरातल पर भू-मध्य रेखीय भाग अधिक तीव्र गति से घूर्णन करता है । इसलिए भू-मध्य रेखीय भागों पर केन्द्रापसारी बल अधिक लगता है । यह बल ध्रुवों की ओर जाने पर धीरे-धीरे कम होता जाता है । इसके कारण यदि कोई प्लेट ध्रुवीय भाग पर स्थित है तो वह भू-मध्य रेखा की ओर प्रवाहित होती है । जैसे भारतीय प्लेट दक्षिणी ध्रुव से भू-मध्य रेखा की ओर प्रवाहित हो रही है । और यदि कोई प्लेट देशान्तर के सहारे उत्तर से दक्षिण फैली है । तो इसका प्रवाह पूर्व से पश्चिम होता है । उपरोक्त प्रभाव की व्याख्या आयलर ने की थी । अतः इसे आयलर सिद्धान्त कहते हैं ।

2. हॉट-स्पॉट-प्लेट -

हॉट-स्पॉट-प्लेट के नीचे मैंटल भाग में किसी किसी स्थान पर रेडियोधर्मी तत्वों की अधिकता होती है । जिसके कारण वहाँ भू-तापीय ऊर्जा उत्पन्न हो जाती है । इस क्षेत्र को हॉट स्पॉट कहा जाता है । इस स्थान से ऊर्जा संवहनीय तरंगों द्वारा ऊपर उठती है । इन तरंगों को प्लूम कहते हैं । इन प्लूम को ही प्लेट के संचलन का प्रमुख कारण माना जाता है ।

प्लेटों की गति

विश्व की सभी प्लेटों की गति असमान है । महासागरीय प्लेटों की औसत गति 5 सेमी. प्रति वर्ष तथा महाद्वीपीय प्लेटों की औसत गति 2 सेमी. प्रति वर्ष है । ग्रीनलैंड प्लेट 20 सेमी. प्रति वर्ष की दर से सर्वाधिक गति से प्रवाहित हो रही है । भारतीय प्लेट गोंडवानालैंड से अलग होने के बाद 12 सेमी. प्रति वर्ष की गति से प्रवाहित हुई । किन्तु यह क्रिटेशियस युग में तिब्बत के द्रास से टकराने के बाद 5 सेमी. प्रतिवर्ष की गति से उत्तर पूर्व दिशा में प्रवाहित होने लगी ।

अपसारी सीमा

जब दो प्लेट एक दूसरे से विपरीत दिशा में अलग हटती है और नई पर्पटी का निर्माण होता है । उन्हें अपसारी प्लेट कहते हैं । वह स्थान जहाँ से प्लेट एक दूसरे से दूर हटती हैं, इन्हें प्रसारी स्थान (Spreading Site) भी कहा जाता है । अपसारी सीमा का सबसे अच्छा उदाहरण मध्य-अटलांटिक कटक है । यहाँ से अमेरिकी प्लेटें उत्तर अमेरिकी व दक्षिण अमेरिकी प्लेटें तथा यूरेशियन व अफ्रीकी प्लेटें अलग हो रही है ।

अभिसरण सीमा

कि जब एक प्लेट दूसरी प्लेट के नीचे धंसती है और जहाँ भू-पर्पटी नष्ट होती है, वह अभिसरण सीमा है । वह स्थान जहाँ प्लेट फँसती हैं, इसे प्रविष्ठन क्षेत्र (Subduction zone) भी कहते हैं । अभिसरण तीन प्रकार से हो सकता है-

1. महासागरीय व महाद्वीपीय प्लेट के बीच
2. दो महासागरीय प्लेटों के बीच
3. दो महाद्वीपीय प्लेटों के बीच ।

रूपांतर सीमा

जहाँ न तो नई पर्पटी का निर्माण होता है और न ही पर्पटी का विनाश होता है, उन्हें रूपांतर सीमा कहते हैं । इसका कारण है कि इस सीमा पर प्लेटें एक दूसरे के साथ-साथ क्षैतिज दिशा में सरक जाती हैं । रूपांतर भ्रंश (Transform Faults) दो प्लेट को अलग करने वाले तल हैं जो सामान्यतः मध्य-महासागरीय कटकों से लंबवत स्थिति में पाए जाते हैं । क्योंकि कटकों के शीर्ष पर एक ही समय में सभी स्थानों पर ज्वालामुखी उद्गार नहीं होता, ऐसे में पृथ्वी के अक्ष से दूर प्लेट के हिस्से भिन्न प्रकार से गति करते हैं । इसके अतिरिक्त पृथ्वी के घूर्णन का भी प्लेट के अलग खंडों पर भिन्न प्रभाव पडता है ।

प्लेट प्रवाह दरें

सामान्य व उत्क्रमण चुंबकीय क्षेत्र की पट्टियाँ जो मध्य-महासागरीय कटक के सामानांतर हैं, प्लेट प्रवाह की दर समझने में वैज्ञानिक के लिए सहायक सिद्ध हुई हैं । प्रवाह की ये दरें बहुत भिन्न हैं । आर्वफटिक कटक की प्रवाह दर सबसे कम है (2.5 सेंटीमीटर प्रति वर्ष से भी कम) । ईस्टर द्वीप के निकट पूर्वी प्रशांत महासागरीय उभार, जो चिली से 3.400 Km पश्चिम की ओर दक्षिण प्रशांत महासागर में है, इसकी प्रवाह दर सर्वाधिक है जो 5 Cm प्रति वर्ष से भी अधिक है ।

प्लेट को संचलित करने वाले बल

सागरीय अस्तल विस्तार और प्लेट विवर्तनिक–दोनों सिद्धांतों ने इस बात पर बल दिया कि पृथ्वी धरातल व भूगर्भ दोनों ही स्थिर न होकर गतिमान हैं । प्लेट विचरण करती है–यह आज एक अकाट्य तथ्य है । ऐसा माना जाता है कि दृढ प्लेट के नीचे चलायमान चट्टानें वृत्ताकार रूप में चल रही हैं । उष्ण पदार्थ धरातल पर पहुँचता है, फैलता है और धीरे–धीरे ठंडा होता है फिर गहराई में जाकर नष्ट हो जाता है । यही चक्र बारंबार दोहराया जाता है और वैज्ञानिक इसे संवहन प्रवाह (Convection Flow) कहते हैं । पृथ्वी के भीतर ताप उत्पत्ति के दो माध्यम हैं–

1. रेडियोधर्मी तत्वों का क्षय (Decay of Radioactive Elements)
2. अवशिष्ट ताप (Residual Heat)

महाद्वीपीय विस्थापन और प्लेट–विवर्तनिकी सिद्धांत में अंतर

1. महाद्वीपीय विस्थापन में सिर्फ महाद्वीपों का विस्थापन बताया गया है, जबकि प्लेट विवर्तनिकी में महाद्वीपों और महासागरों दोनों का संचरण बताया गया है ।
2. महाद्वीपीय विस्थापन वलित पर्वतों के निर्माण का कारण SiMa और SiAI के घर्षणात्मक संयोग के आधार पर बताता है, जबकि प्लेट विवर्तनिकी इसका कारण टेक्टोनिक प्लेटों के अभिसरण को बताता है ।
3. प्लेट विवर्तनिकी ज्वालामुखियों के निर्माण की प्रक्रिया की जानकारी देता है, परंतु महाद्वीपीय विस्थापन से ऐसी कोई जानकारी नहीं मिलती है ।